National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2023; 1(50): 202-204
© 2023 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. लालसिंहपठानिया
प्राचार्य: (प्र.),
सनातनधर्म-आदर्शसंस्कृतमहाविद्यालयः,
डोहगी, ऊना, हिमाचलप्रदेशः

Correspondence:
डॉ. लालसिंहपठानिया
प्राचार्य: (प्र.),
सनातनधर्म-आदर्शसंस्कृतमहाविद्यालयः,
डोहगी, ऊना, हिमाचलप्रदेशः

वेदार्थनिर्णय में देवतातत्त्व का वैशिष्ट्य

डॉ. लालसिंहपठानिया

वेद सर्वतोमुखी ज्ञान का अच्छे स्रोत हैं। मनुष्यमात्र के कल्याण एवं सुख के लिए चिरकाल से प्रवर्त्तित वैदिकधर्म सभी युगों में प्रासंगिक होने के कारण **'सनातन'** कहा जाता है। यह अभ्युदय और निःश्रेयस का उत्तममार्ग है। मानवजीवन के समस्त उपयोगी तत्त्व इसमें निहित हैं। वेदों के सम्बन्ध में आचार्य मनु का कथन है -

वेदोऽखिलो धर्ममूलं, स्मृत्तिशीले च तद्विदाम्।
धर्मजिज्ञासामानानां प्रमाणं परं श्रुतिः॥
श्रुतिस्तु वेदविज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्व मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ।।[1]
अनादिनिधना नित्या वागुत्सष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः।

अर्थात् सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अनादि एवं अनन्त दियतेजरूपी वाणी को प्रकट किया।[2] उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है, कि वेद अनादि हैं, अनन्त हैं, अपौरुषेय हैं, सनातन हैं, शाश्वत हैं एवं परमपिता परमात्मा के स्वभाविक निःश्वासोच्छ होने के कारण साक्षात ब्रह्म है। ब्रह्मा की सर्वप्रथमता में वेद के अनेक प्रमाण विद्यमान हैं। सृष्टि का कृतित्व एकमात्र ब्रह्म पर ही स्थिर किया गया है। यथा - भूतानां ब्रह्मा प्रथमो जज्ञे।[3] ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।[4] यो ब्रह्मणं विदधाति पूर्वम्। यो वै वेदाशच प्रहिणोति तस्मै। तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।[5]

विश्व के कर्त्ता और भुवन के रक्षक ब्रह्मा सभी देवताओं में सर्वप्रथम उत्पन्न हुए। जिस परमात्मा ने सर्वप्रथम ब्रह्मा जी को बनाया और उसके प्रति वेदों को भेजा। उस हिरणमय अण्ड में सब लोगों के पितामह ब्रह्मा जी स्वयं उत्पन्न हुए। इसके बाद योगियों में श्रेष्ठ बहुत तेजस्वी एवं समस्त लोगों को बनाने वाले चतुर्मुखब्रह्मा जी को उत्पन्न किया। अतः ब्रह्मा जी के समय से ही ऋषि देवता चरित्रात्मक एक प्रधान अंश भी गुरु शिष्य परम्परा द्वारा उपदिष्ट होने लगा था।

यास्क के कथानुसार जब असाक्षात्कृत धर्म ऋषियों को उपदेश द्वारा वेदमन्त्र समझाने का युग आरम्भ हुआ, तब उस समय वेदमन्त्रोदेश से पूर्व विनियोगों का बतलाना आवश्यक समझा गया। वैदिकसाहित्य का यह अनादि एवं सर्वतन्त्र सिद्धात है, कि विनियोग के बिना मन्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना न केवल निरर्थक ही है, अपितु महान् प्रत्यवाय एवं पाप का कारण भी है। विनियोग का अर्थ है - मन को प्रयोग में लाने का परिपूर्ण विधान। उसके प्रधानतया चार अंग हैं - ऋषि, देवता, छन्द और मन्त्रानुष्ठान।

ऋषि - जिस मन्त्र को जिस ऋषि ने समाधिद्वारा प्राप्त करके प्रचारित किया हो, वही उस मन्त्र का ऋषि यानी दृष्टा कहा जाता है। इस तरह प्रत्येक वेदमन्त्र के साथ किसी मन्त्रदृष्टा-ऋषि का नाम सम्बद्ध है।

देवता - जिस मन्त्र में मुख्यरूप से जिस देवता का लिंग विद्यमान होता है अथवा जिस मन्त्र में सर्वदेव परमात्मा की जिस दिव्यशक्ति का विशेष वर्णन हो, वही शक्ति उस मन्त्र की देवता मानी जाती है। अतः प्रत्येक वेदमन्त्र के साथ किसी न किसी देवता का नाम भी सम्बद्ध रहता है। **छन्द -** 'छन्द पादौ तु

वेदस्य'[6] के अनुसार छन्द वेद का पैरस्थानीय कहा जाता है । यह छन्द गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् आदि नामों से विख्यात है और प्रत्येक मन्त्र के पास उसकी अक्षरसंख्या के अनुसार निर्धारित किए गए हैं ।

अनुष्ठान - यज्ञादि के समय या अन्यान्यकर्मों में किस वस्तु को उठाने या रखने में किस मन्त्र का पढ़ना आवश्यक है, यह रहस्य जानना है मन्त्रानुष्ठान कहा जाता है। इस तरह वेदार्थनिर्णय में उक्त देवता, ऋषि, आदिकाल अत्यन्त आवश्यक है । इनके बिना मन्त्र का सही अर्थ नहीं किया जा सकता । इनकी उपयोगिता का उल्लेख कात्यायन अनुक्रमणिका में किया गया है - एतानि अविदित्वा यो अधीते, अनुब्रूते जपति, जुहोति, यजते, याजते, तस्य ब्रह्म निवीर्यं यातयामं भवति । अथान्तरा श्वगर्त्तं वा पद्यते स्थाणुं वर्च्छति प्र वा मीयते पापीयान् ।[7]

अर्थात् इन चारों बातों को न जानता हुआ जो वेद को पड़ता पड़ता है, जप करता हवन करता है, तथा यज्ञ करता है या करवाता है, उस पुरुष का वेद तेजोरहित हो जाता है । शाखाहीन सुखे लक्कड़ में टक्कर मारता है, गड्ढे में गिर जाता है तथा मर जाता है तथा महान् पापी हो जाता है और इन ऋषि देवता अनुष्ठानादि को ज्ञान को जानकर अर्थसहित जो वेदमन्त्रों को पढ़ता है, वह महातेजस्वी होता है । ऐसे ही मन्त्रों का जप करने से, हवन करने से, यज्ञादि करने से वेदपाठ का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। इस प्रकार वैदिकसाहित्य में विनियोग ज्ञान की परम आवश्यकता बताने वाले अनेक प्रमाण हैं । मन्त्रदृष्टा-ऋषियों ने अपने आसाक्षात्कृत्-शिष्यों को जिस समय मन्त्रोपदेश देना आरम्भ किया, उसी समय ज्ञान की परिपूर्णता के लिए सर्वप्रथम उक्त विनियोगों का ही उपदेश दिया।

वैदिक देवतावाद - देवतावाद के प्रधानग्रन्थ बृहद्देवता में लिखा है -

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति॥[8]

अर्थात् प्रत्येकमन्त्र के देवता का परिज्ञान करना चाहिए क्योकि देवताज्ञान से युक्त विद्वान् ही वेदार्थ और वेदरहस्य को समझ सकता है। बृहद्देवता का यह भी कहना है, कि चेतनाधिष्ठान से रहित शरीर का कोई भी अंग कार्य नहीं कर सकता, अधिष्ठाता को अवश्य होना चाहिए। परन्तु अन्ततः सभी जड़-चेतनाअदि पदार्थ एक ही तत्त्व द्वारा सञ्चालित किये गये हैं - तस्मात् सर्वोपरि परमेश्वर एव हूयते।

देवता शब्द अनेक अर्थो को द्योतित करता है । यास्क के अनुसार - 'देवो दानात् द्योतनाद् दीपनाद् वा'[9] अर्थात् पदार्थों को देने वाले, प्रकाशित होने वाले, अथवा प्रकाशित करने वाले को देवता कहा जाता है।

ऋग्वेद में देवताओं की कुल सङ्ख्या 33 है। यास्क ने देवताओं के तीन प्रकार बताए हैं - पृथ्वीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय एवं द्युस्थानीय देवता । अनेक विद्वान् विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों को देवता कहते हैं । कुछ आलोचकों ने अग्नि आदि देवतावाचक शब्दों का अर्थ परमेश्वर किया है तथा उसमें विभिन्न शक्तियों की कल्पना की है।

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।
तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥"[10]

वैदिक ऋषियों को प्रकृति के विभिन्न प्रभावशाली, सशक्त एवं हितकर रूपों के पीछे एक ही अज्ञात सर्वशक्तिमान् सत्ता काम करती हुई प्रतीत होती थी। अचेतनदृश्यों के प्रति उनकी दिव्यदृष्टि किसी चेतना का अनुसन्धान करती थी, जो जगत् की प्रत्येक क्रियाशीलता में व्याप्त है। अतः वे प्रकृति के उस विशिष्टतत्त्व की उपासना नहीं करते थे, अपितु उसमें अभिव्यक्त दिव्यशक्ति की उपासना करते थे। पाश्चात्यवैदिक विद्वान् भी उन्हें भौतिकजगत् के प्राकृतिकदृश्यों के अधिष्ठाता मानते हैं । सर्वानुक्रमणी के अनुसार - 'यस्य वाक्यं स ऋषिः'। या तेन उच्यते सा देवता'॥

देव अथवा देवता का आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक अर्थबोध हो सकता है। ये दोनों शब्द लौकिक तथा अलौकिक सन्दर्भों में समानरूप से प्रतिभासित होते हैं । इस प्रकार प्रतिपाद्यविषय देवता हुआ । सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नामक चारों ऋषियों नें क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में परमात्मा से ज्ञान प्राप्त कर मनुष्यों को उपदेश दिया, वही विषय मन्त्रों के देवता हैं ।

कुछ समय पश्चात् जिन वेदव्याख्याता, अध्यापक, मन्त्रद्रष्टा, ऋषियों ने जिन-जिन वेदमन्त्रों का विशेष अध्ययन कर विशेषव्याख्या की, उन आख्यात मन्त्रों के शीर्षक के रूप में वर्णित विषय ही कालान्तर में उन-उन मन्त्रों के देवता हुए । यास्क के अनुसार यद्यपि इस जगत् के मूल में एक ही महत्त्वशालिनी शक्ति विद्यमान थी, अत्यन्त ऐश्वर्यसम्पन्न होने के कारण वही ईश्वर कहलाती है वह एक है और अद्वितीय है । उसी एक देवता की अनेक रूपों में स्तुति की जाती है -

महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मन्योऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।।[11]

ऋग्वेद में देवताओं को असुर कहा है । असुर का अर्थ है - असुविशिष्ट अथवा प्राणशक्ति सम्पन्न । इन्द्र, वरुण, सविता, उषा आदि देवता असुर हैं । वे देवता 'आतस्थिवांसः' (स्थिर रहने वाले) 'अनन्तासः' 'अजिरासः' आदि विशेषताओं वाले होते हैं ।[12] देव-दानव-मानव के न्यूनाधिक प्रकर्षापकर्ष के बोधक भी होते हैं । यथा ईशावास्योपनिषदादि में 'द्योतनाद्देवाश्चक्षुरादीनीन्द्रियाणि' से स्पष्ट इंगित किया गया है ।

'सूर्यस्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इस मन्त्रभाग से विश्व की आत्मा सूर्य को कहा गया है । इस प्रकार सूर्य के आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक स्वरूपों का संकेत किया गया है ।

एक अन्य दृष्टि से देवता दो प्रकार के माने गये हैं - प्रथम - आदिष्टदेवता, द्वितीय - अनादिष्टदेवता।

1. आदिष्ट - मन्त्रों में अग्नि आदि का नाम स्पष्टरूप से आया है, यथा - अग्निमीळे पुरोहितम् ....।[13] मन्त्र में अग्नि साक्षात् नाम है देवता के रूप में ।

2. अनादिष्ट - मन्त्रों में जिनका नाम नहीं आया, किन्तु अर्थ विनियोगादि के आधार पर जिनका निश्चय किया जाता है । यथा

चत्वारि शृङ्गाः त्रयो अस्य पादाः द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवा मर्त्यां आ विवेश ।।[14]

इस प्रकार के सन्दर्भ में यास्क, पतञ्जलि, कात्यायन आदि के अनुसार यज्ञ, अग्नि, सूर्य, आपः, गावः आदि देवता बताये गये हैं, परन्तु मन्त्र में इनमें से किसी का भी नाम नहीं है ।

मुख्यरूप से वेदों में 12 देवता दिखाये गये हैं । परन्तु इन 12 के धातु प्रत्यय अथवा निर्वचन के अनुसार एक के एकाधिक जितने भी अर्थ होंगे, वे सभी देवता होगें । यथा - "अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रूद्रा देवता आदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।।"[15] यहाँ अनादिष्ट देवताओं के सन्दर्भ में यास्क ने लिखा है - 'तद् येनाऽदिष्टदेवता मन्त्रास् तेषु देवतोपपरीक्षायद्दैवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद् देवता भवन्ति ।'[16] इत्यादि में यज्ञ, यज्ञाङ्ग, प्रजापति, नराशंस, माता, पिता, विद्वान्, अतिथि, काम तथा वेदों के मन्त्र भी देवता होने का संकेत है ।

देवशब्द ही देवात् तल् सूत्र से स्वार्थ में तल् प्रत्यय करने पर देवता कहलाता है । अन्तर इतना है, कि देव शब्द पुल्लिङ्ग में और देवता स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त है । देव की निष्पत्ति चार धातुओं से होने के कारण इन चतुर्विध-अर्थ-गुण सम्पन्न सभी देव कहलाते हैं । यथा -

1. देवो दानाद् - देवता सुख, धन, जीवन, गति और विद्या आदि देता है । जैसे - ईश्वर और विद्वान् ।
2. दीपनाद् - प्रकाश अर्थ वाली दीप् धातु से । जैसे - सूर्य, चन्द्र ।
3. द्योतनाद् - वेदमन्त्र, माता, पिता, आचार्य, अतिथि आदि विद्याओं का द्योतन करते हैं ।
4. द्युस्थानीय - दिवि तिष्ठतीति - सूर्य आदि का स्थान द्यौ है । अश्विनौ आदि 31 देवता द्युस्थानीय हैं ।

उक्त 22 देवताओं के अतिरिक्त मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण भी देवता हैं । इनके साथ 5 देव मिलाकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और शतपथब्राह्मण में 33 देवता बताए गये है। निघण्टु में देवताओं को तीन भागों में बांट कर कुल 151 देवता गिनाये गए हैं । तीन भाग हैं -

1.पृथिवीस्थानीय देवता- अग्नि, बृहस्पति सोम और अन्य 51 देवता आते हैं ।

2.अन्तरिक्षस्थानीय देवता - रुद्र, इन्द्र तथा अन्य 67 देवता प्रमुख हैं।

3.द्युस्थानीय देवता - सूर्य तथा अन्य 30 देवता नाम से जाने जाते हैं।

इस प्रकार इन देवताओं में मुख्य तीन और जोड़ने से कुल 151 देवता निघण्टु में कहे गये हैं।

गोस्वामीतुलसीदास जी के अनुसार -

मन समेत जहाँ पहुँ च न वानी।
तर्कि न जाई सकल अनुमानी॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य'[17] के अनुसार देवता दिखाई क्यों नहीं देते इसका स्पष्टीकरण वेदादिग्रन्थों में किया गया है - परोक्षं वै देवा ।[18]

न ह वा अनार्षे यस्य देवा हविरश्नवन्ति ।[19] देवता साधारण मनुष्यों के चर्म-चक्षु का विषय नहीं हैं । देवता अपने भक्तों की भक्ति से जब चाहे, जैसा रूप चाहे ग्रहण कर दर्शन दे सकते हैं - यद् रूपं कमयते तत्तद् देवता भवति।[20] देवताओं का निवास स्थान मुख्यरूप से स्वर्गलोक में माना गया है - परो वा अस्मांल्लोकात्स्वर्गो लोकः ।[21] वस्तुतः देवताओं का स्वरूप तथा रहस्य सर्वजनगम्य न होकर विशिष्टविद्वानों के स्वानुभवगम्य है । पृथिवी, जल, तेज, वायु आदि में सर्वत्र विद्यमान् अभिमानी चेतन देवता मन्त्र (वेद) ब्राह्मण तथा इतिहास-पुराणों से ज्ञाप्य हैं । अतः इन्हे मात्र इष्टापूर्ति देने वाले प्रतीकात्मक सामान्य देव अथवा देवता मानकर साधारणस्वरूप बुद्धि से आकलन करना अभीष्ट नहीं है ।

संदर्भ ग्रन्थः

1 आचार्य मनु, मनुस्मृति, 2.5-6

2 आचार्य मनु, मनुस्मृति, 2.5-13

3 अथर्ववेद, 18.22.21

4 मुण्डकोपनिषत्,

5 मनुस्मृति, 1.9

6 पाणिनीय शिक्षा, 41-42

7 कात्यायन, अनुक्रमणिका, 1.1

8 बृहद्देवता, 1.2

9 महर्षि यास्क, निरुक्त, 1.2

10 कठोपनिषत्, 5.15

11 महर्षि यास्क, निरुक्त, 7.4.8.9

12 ऋग्वेदः, 5.47.2

13 ऋग्वेदः, 1.1.1

14 ऋग्वेद, 4.58.3 , यजुर्वेद, 17.91

15 यजुर्वेद, 14.20

16 महर्षि यास्क, निरुक्त, दैवतकाण्ड

17 श्रीमद्भगवद्गीता, 7.25

18 शतपथब्राह्मण, 3.1.3.35

19 कौषितक्युपनिषत्, 1.2

20 महर्षि यास्क, निरुक्त, 10.87

21 एतरेय, 6.20